REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 12 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2022

अज्ञेय और टी.एस. इलियट की दृष्टि में काव्य की प्रयोजनीयता का अध्ययन

आशुतोष शुक्ल[1] , डॉ. रामेश्वर पाण्डेय[2]
[1]शोधार्थी हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)
[2]सेवानिवृत्त प्राध्यापक हिन्दी, शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश –

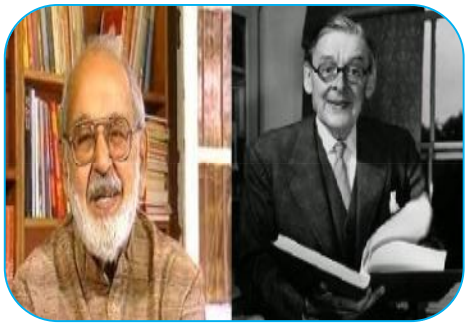

टी.एस. इलियट की काव्य की प्रयोजनीयता उनके चिंतन की प्रमाणिकता एवं तार्किकता पर आधारित है। अज्ञेय और इलियट के काव्य की प्रयोजनीयता में अनेक देशों की संस्कृतियों, सभ्यताओं, दार्शनिक मान्यताओं, भाषाओं तथा साहित्यिक परंपराओं का संगम था। कला के समस्त रूपों का उन्होंने अध्ययन किया था। अंग्रेजी साहित्य में इलियट को स्वच्छंदतावाद के विरोधी के रूप में समझा जाता है। फिर शास्त्रवाद अथवा क्लसिसिज्म के सम्बंध में इलियट का मत कुछ भिन्न प्रकार का है। इलियट के अनुसार क्लासिक का अर्थ साहित्य में परिपक्वता अथवा प्रौढ़ता है। इलियट ने लैटिन कवि वर्जिल को व्यापक अर्थ में क्लासिकल कवि माना है क्योंकि उसके सम्मुख केवल किसी अमुक युग अथवा अमुक जाति का इतिहास नहीं था–एक सर्वव्यापक चेतना मौजूद थी। उसका कथन है कि क्लासिक की दृष्टि तभी संभव है जबकि सभ्यता परिपक्व हो, भाषा और साहित्य प्रौढ़ हो और वह प्रौढ़ मस्तिष्क की रचना हो। यदि हमारा मस्तिष्क प्रौढ़ हो और हम शिक्षित हैं तो हमें सभ्यता और साहित्य की प्रौढ़ता का ज्ञान हो सकता है।

मुख्य शब्द – अज्ञेय, इलियट, काव्य, प्रयोजनीयता एवं साहित्यिक परंपरा।

प्रस्तावना –

'अज्ञेय' अपनी कविता में केवल बिम्ब नहीं, पूरे–पूरे चित्र रचते हैं। इसका कुछ कारण तो उनकी प्रतीक–पद्धति को माना जा सकता है, पर अधिकांशतः यह उनके कवि की जागरूकता और भावक्षमता का परिचायक है, साथ ही उनके काव्यबोध की व्यापकता और गहराई का भी। डॉ. अजीत कुमार के शब्दों में – सिद्धांत के स्तर पर, निर्वैयक्तिकता, क्षण की महत्ता, अनुभव की अद्वितीयता और आत्मदान 'अज्ञेय' के प्रिय 'थीम' है। पर जो अद्वितीय अनुभव केवल कवि ने जिया हो, उसे किसी को देने की बात सोचना क्या निरी आत्मवंचना नहीं है? और क्या उतनी ही या उससे कहीं अधिक मात्रा में अनुभव संवेद्य, सर्वसुलभ तथा साधारणीकृत नहीं होता? यदि नहीं, तो कविता लिखने या पढ़ने की आवश्यकता ही क्या है? तब तो 'गूँगे के गुड़' की भाँति, काव्यानुभूति को भी अन्तर्गत रखना पर्याप्त होता![1]

जब 'अज्ञेय' अपने प्रयोगवादी, अहंवादी, व्यक्तिवादी आदि अनेक नामों से स्मरण किया जाता रहा है। स्वयं 'अज्ञेय' ने अपने–आपको आखिरकार 'कवितावादी' कहे जाने की छूट दे दी थी लेकिन ऐसा करते समय शायद उनके ध्यान में यह बात न थी कि 'कविता' को लेकर उन्होंने इतनी अधिक कविता लिखी है कि वही उन्हें इस विशेषण का अधिकारी बनाने में समर्थ है।

टी.एस. इलियट की तरह सिद्धांत के स्तर पर, निर्वैयक्तिकता, क्षण की महत्ता, अनुभव की अद्वितीयता और आत्मदान 'अज्ञेय' के प्रिय 'थीम' है। पर जो अद्वितीय अनुभव कवि ने जिया हो, उसे किसी को देने की बात सोचना क्या निरी आत्मवंचना नहीं है? और क्या उतनी ही या उससे कहीं अधिक मात्रा में अनुभव संवेद्य, सर्वसुलभ तथा साधारणीकृत नहीं होता? यदि नहीं, तो कविता लिखने या पढ़ने की आवश्यकता ही क्या है? तब तो 'गूँगे के गुड़' की भाँति, काव्यानुभूति को भी अन्तर्गत रखना पर्याप्त होता![2]

एक विशेष रूप से 'अज्ञेय' के 'कवितावादी' होने का जो संकेत पहले किया जा चुका है, उसी से सम्बद्ध यह प्रवृत्ति भी उनमें देखी जा सकेगी कि प्रायः अपनी कविता में वे, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से, अपने काव्य–सिद्धान्त निरूपित करते चलते हैं। सामान्य कविताओं की बात छोड़ ही दें, 'असाध्य वीणा' तक के अनुपम लालित्य को इसी प्रवृत्ति के कारण, अनेक स्थलों पर आघात पहुँचा है। यह ठीक है कि उक्त काव्य–सिद्धान्त सर्वथा ऊपर से थोपे नहीं जान पड़ते, किन्तु रचना में उनका विशेष रूप से उल्लेख होना किसी भी प्रकार आवश्यक नहीं। यह रूप जो केवल मैंने देखा, यह अनुभव अद्वितीय, जो केवल मैंने किया, सब तुम्हें दिया।[3]

रोमांटिक अथवा रहस्योन्मुख कवि की भावना जिसके प्रति विगलित और समर्पित होती है, उसका स्वरूप सदा अशरीरी एवं सूक्ष्म रहा है। स्वयं कवियों ने भी उसे जानने के असफल–से प्रयास किये हैं, कदाचित् भक्त कवियों ने ही उसे किसी सीमा तक पहचाना होगा। एक व्यक्तित्व से अनेक आशयों की पूर्ति की आशा में, जैसे रोमांटिक कवि वर्ड्सवर्थ ने 'टु गाइड, टु कम्फर्ट एण्ड कमाण्ड' के प्रति अपने को निछावर किया था और छायावादी कवि पन्त ने 'देवि, माँ, सहचरि, प्राण' को स्मरण किया था, वैसे ही आधुनिक कवि 'अज्ञेय' भी उसे 'तुम, गुरु, सखा, देवता' अथवा 'ताल, सखा, गुरू, आश्रय', कहकर बूझना चाहते हैं, पर इसी कारण आस्था एवं विश्वास का वह आधार 'ईश्वर' नहीं बन जाता। एक के लिए वह स्त्री है, दूसरे के लिए प्रकृति, और तीसरे के लिए कुछ अन्य।[4]

विश्लेषण –

'अज्ञेय' के काव्य अपने निजी, वैयक्तिक घेरे में बंधे हुए यदि कभी थे भी तो अब उससे बाहर आ रहे हैं। उदासी, अंधकार अथवा अकेलेपन की जो अनुभूतियाँ वर्तमान जीवन एवं व्यक्तिवाद की देन हैं, उनसे असम्पृक्त रहने के लक्षण भी इन कविताओं में मिलते हैं। इस मुक्ति अथवा असम्पृक्ति का एक उत्पादन है – प्रेम, जिसका विस्तार 'अज्ञेय' की इन कविताओं में, व्यक्तिविशेष से लेकर लोकगीत सत्ता के आभास तक फैला हुआ है। इन्हीं माध्यमों से अज्ञेय ने समूह या लोक को पहचाना है। उनकी प्रिय, सर्वनाम शैली में कहें कि 'वह' अथवा 'उस' का परिचय 'अज्ञेय' के 'मैं' ने 'तुम' के जरिये पाया है। यों, एक अकेली मछली की उछाल में अनुरक्त प्रतीत होने वाले कवि की एक अन्य मुद्रा हमें और भी आश्वस्त करती है तथा उसकी रचना को समुचित संदर्भ में रखकर देखने देती है–

''मेरे छोटे घर कुटीर का दिया
तुम्हारे मंदिर के विस्तृत आँगन में
सहमा–सा रख दिया गया''[5]

बरहाल, 'आओ रानी हम ढोएंगे पालकी, यही हुई है राय जवाहर लाल की' एक ऐसी चतुर–चलताऊ तुकबंदी है जो थोड़ी देर के लिए गुदगुदा देने के अलावा कोई स्थायी या गंभीर प्रभाव नहीं छोड़ती। उसके पीछे समकालीन राजनीति की वैसी ही ओछी और छिछली समझ नज़र आती है। जैसी चीन के साथ हमारे संघर्ष के दौरान कवियों की ऐसी गर्वोक्तियों में नज़र आती थी कि वे 'चीन को चीनी की तरह घोल कर पी जाएंगे।' उन फर्माइशी मजमेबाज़ों की तुलना में नागार्जुन कहीं अधिक प्रासंगिक और गंभीर ध्यान के अधिकारी हैं। वे हमारे युग के बड़े कवि इस नाते हैं कि अपने स्वाभाविक आवेगयुक्त, व्याकुल स्वर में वे अपनी परम्परा, धरती, घर, परिवार, देश आदि की छवियाँ उकेरने में समर्थ हुए। उन्हें अपनी सरलता–सहजता के नाते अपने समसामयिकों का ही नहीं, बाद वाली पीढ़ी का भी भरपूर अपनत्व और सौहार्द्र हासिल हो सका। उस नाते वे 'जनकवि' की अपेक्षा हमारे चित्त में ऐसे 'स्वजन' कवि की भाँति सुरक्षित हैं, जिसकी अनेक रचनाएं लम्बे समय तक हमारे मन का अंतरंग हिस्सा बनी रहेंगी। वे जिस भाँति घर से भागते और वहाँ वापस लौटते रहे, वह उस हलचल और विचलन का संकेत है, जिसने न उनकी कोई निश्चित छवि बनने दी, न किसी एक जगह स्थिर ही रहने दिया।

अपने गाँव 'तरौनी' पर लिखी उनकी प्रसिद्ध कविता सदैव पढ़ी–सराही जाएगी। उचित यह होगा कि उनकी लोकप्रिय हो गयी बहुत सी कविताओं तथा गंभीर काव्य वैभव से सम्पन्न कविताओं के बीच तारतम्य बिठाया जाए ताकि उनकी खंडित या अस्तव्यस्त छवि बनने की जगह सूत्रबद्ध वह तस्वीर उभर सके जिसके नाते किसी कवि को उसके पूरेपन में जानना–पहचानना संभव होता है। माना कि कोई भी कलाकार अपने समूचे रचनाकाल में एक ही जगह टिका नहीं रहता; वह अपना निर्माण करता निरंतर विकासशील रहता है ..... लेकिन यात्राएं मुख्यतः दो तरह की होती हैं – कुछ कवि–कलाकार अपने अनुभव की सीमित भूमि में गहरे और अधिक गहरे जाते रहते हैं जबकि दूसरी तरह के कलाकार निरंतर नए क्षेत्रों और आयामों का संधान गाता है।

भले ही 'अज्ञेय' ने उसे कहीं 'ईश्वर', 'ईश्वर–योगी' या 'महाशून्य' कह दिया हो, वह किसी धर्मप्राण व्यक्ति के ईश्वर से भिन्न है। वह है, वस्तुतः वाणी मन्दिर के भक्त (कवि) का, असाध्य वीणा के साधक (कवि) का, अथवा उत्कट जिजीविषा के चितेरे (कवि) का अन्वेष्य (काव्य), जिसके प्रति समर्पित हो, कवि कहता है –

''तू काव्य :
सदा वेष्टित यथार्थ चिर–तनित,
भारहीन, गुरु, अव्यय।
तू छलता है
पर हल छल में तू और विशद
अभ्रान्त, अनूठा होता जाता है।''[6]

अज्ञेय के नवीनतम काव्य संग्रह की मूल चेतना की ओर 'आँगन के पार द्वार' में कवि का भाव इस प्रकार ध्वनित हुआ है। यथा–

''मैं, मौन–मुखर, सब छन्दों में
उस एक अनिर्वच, छन्द–मुक्त को
गाता हूँ।''[7]

कवि के व्यक्तित्व में परंपरा के वे समस्त जीवंत तत्व शामिल होने चाहिए जिसके बारे में इलियट की मान्यता है कि परंपरा से मेरा मतलब है उन सब आदतों, अभ्यासजन्य कार्यों और रीति–रिवाजों से हैं। अत्यन्त महत्वपूर्ण धार्मिक कार्यों से लेकर किसी नवागन्तुक को अभिनंदन करने के स्वीकृत तरीकों तक–जो एक साथ एक स्थान में रहने वाले एक समुदाय के व्यक्तियों के रक्त सम्बंधों को व्यक्त करते हैं।''[8]

इलियट के पूर्व मैथ्यू आर्नल्ड ने सृजन और समीक्षा में अन्तर करते हुए सृजनात्मक व समीक्षात्मक कालखंडों की अवधारणा विकसित की थी। इलियट ने इसका विरोध करते हुए यह प्रतिपादित किया कि सृजन और समीक्षा रचना के ही उपादान हैं, दोनों में कोई मूलभूत अंतर नहीं है।

काव्य वस्तु का चुनाव न तो केवल समसामसियक सन्दर्भों से पूरा हो सकता है और न ही अतीत जीवी विचारों से ही। दोनों में संतुलन या समन्वय आवश्यक है। इलियट की परम्परा, सम्बंधी मान्यताओं का हिन्दी की प्रयोगवादी कविता का अत्यधिक प्रभाव है। तारसप्तक में संकलित सातों कवियों ने लगभग कामोवेश परम्परा पर विचार किया है। सम्पादक की परम्परा सम्बंधी मान्यताओं पर तो इलियट का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता ही है। मुक्तिबोध ने भी संस्कृति के सापेक्ष परम्परा पर गंभीर चिंतन मनन किया है। मुक्तिबोध काव्य को एक सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते हैं तो स्पष्टतः इलियट के परम्परा सम्बंधी विचारों से सहमत दिखते हैं। इसी प्रकार भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचन्द जैन, गिरिजा कुमार माथुर आदि कवियों ने भी परम्परा के सम्बंध में इलियट से मिलती–जुलती बातें प्रस्तुत की हैं।

प्रभाव का यह स्वरूप अनुकरण मूलक कतई नहीं कहा जा सकता। यूरोप में जिस समय इलियट के विचार प्रसारित हो रहे थे, उस समय वहाँ की जो परिस्थितियाँ थी उन्हीं से मिलती–जुलती भारतीय साहित्य में भी थीं। जब प्रयोगवादी काव्य का उन्मेष हो रहा था। वस्तुतः प्रयोगवाद नाम तत्कालीन आलोचकों द्वारा प्रदत्त है। यह तो सत्य है कि प्रयोगवादी धारा के समस्त कवि राहों के अन्वेषी थे। वे बनी–बनाई राहों का अनुसरण करना नहीं चाहते थे। जिस प्रकार पाश्चात्य प्रयोगशीलता पर वहाँ की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्रान्तियों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है, उसी प्रकार भारतीय वातावरण में प्रयोगवादी काल गांधीयुग के बहुत आस–पास ही था। तारसप्तक के प्रकाशन के एक वर्ष पूर्व गांधी जी के नेतृत्व में भारत छोड़ो आंदोलन सम्पन्न हो चुका था और उसके प्रभाव से भारतीय जनता तब भी मुक्त नहीं हो पाई थी। गांधी जी ने अपनी

सभी आंदोलनों को प्रयोगवादी ही कहा था। सत्य और अहिंसा, सविनय अवज्ञा, दांडी मार्च आदि सारे ही आंदोलनों का प्रयोग साध्य थे। उन्होंने अपने द्वार किए गए सभी कार्यों के मूल में प्रयोगशीलता को महत्वपूर्ण माना था। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण यह था कि स्वयं महात्मा गांधी भारत की महान धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परम्पराओं को बहुत देते थे। स्वयं महात्मा गांधी बहुत सफल गद्यकार, निबंधकार एवं जीवनी लेखक थे।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों में गांधी जी ने अनेक भूमिकाओं का निर्वाह किया था। लाख व्यस्तता के बावजूद वह अपने लिए पढ़ने व लिखने का समय निकाल लेते थे। गांधी जी के विचारों का न सिर्फ हिन्दी कविता बल्कि भारतीय कविता पर कितना प्रभाव पड़ा है, यह अलग से अनुसंधान का विषय हो सकता है। यहाँ सिर्फ इतना ही अभिप्रेत है कि हिन्दी की प्रयोगवादी कविता ने निःसंदेह गांधी जी के प्रयोगवादी विचारों को किसी न किसी रूप में आत्मसात किया है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः टी.एस. इलियट के प्रभावों के अतिरिक्त इस कविता ने और किन–किन विचारधाराओं का प्रभाव ग्रहण किया, गांधीवाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद, प्रतीकवाद, बिम्बवाद, नवयथार्थवाद आदि वादों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव प्रयोगवादी कविता पर देखा जा सकता है। स्वयं इलियट की काव्य सम्बन्धी मान्यताओं पर मैथ्यू आर्नल्ड, आई.ए. रिचर्ड्स एवं उन्नीसवीं शताब्दी के अंग्रेजी समालोचकों का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। अज्ञेय और इलियट के काव्य की प्रयोजनीयता भारतीय और पश्चिमी युगानुरूप साम्य रखती है। हिन्दी काव्य साहित्य पर अंग्रेजी स्वच्छंदवादी चेतना ने छायावादी काल से अपनी छाप छोड़ना शुरू कर दी थी। प्रयोगवादी कविता पर पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के संदर्भ में टी.एस. इलियट की ही विशेष चर्चा की जाती है। कुछ नये कवियों पर इलियट के प्रभाव को देखते हुए उन्हें 'इलियटवादी' तक कह दिया गया है। इलियट के काव्य सम्बंधी सिद्धांतों एवं उनके काव्य में निहित प्रवृत्तियों की चर्चा पश्चिम में ही नहीं, अपितु हिन्दी साहित्य में भी खूब हुई है। काव्य के सृष्टा और आलोचक दोनों रूपों में आधुनिक अंग्रेजी साहित्य के अन्तर्गत इलियट का अन्यतम स्थान है।

संदर्भ –

1. अजित कुमार – सात छायावादोत्तर कवि, पृष्ठ 21
2. अजित कुमार – सात छायावादोत्तर कवि, पृष्ठ 21
3. अजित कुमार – सात छायावादोत्तर कवि, पृष्ठ 21
4. अज्ञेय – आँगन के पार द्वार, पृष्ठ 78
5. अजित कुमार – सात छायावादोत्तर कवि, पृष्ठ 20
6. अज्ञेय – आँगन के पार द्वार, पृष्ठ 57
7. अज्ञेय – आँगन के पार द्वार, पृष्ठ 39
8. पार्ट्स आफ ब्यू, ट्रेडिशन, लंदन, पृष्ठ 21